International Journal of Applied Research 2016; 2(1): 869-871

International Journal of Applied Research

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2016; 2(1): 869-871
www.allresearchjournal.com
Received: 24-11-2015
Accepted: 28-12-2015

मिहीर कुमार झा
पूर्व शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग,
ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय,
दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
मिहीर कुमार झा
पूर्व शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग,
ल.ना. मिथिला विश्वविद्यालय,
दरभंगा, बिहार, भारत

स्त्रियों के सम्बन्ध में कानून के द्वारा उठाये गये कदम तथा सामाजिक संस्थाओं की भूमिका

मिहीर कुमार झा

सारांश

विधाता की सर्वश्रेष्ठ कृति है मानव, और मानव की उच्चतम उपलब्धि हे उसका समाज। समाज बना हे स्त्री और पुरूष से, नर और नारी से। दोनों का ही समाज की उन्नति ओर प्रगति में महत्वपूर्ण स्थान हे। अतः समाज को भी चाहिये कि वह अपनी स्वतन्त्र इकाइयों नर और नारी दोनों के साथ पक्षपात रहित समान व्यवहार करे जो कि न्यापूर्ण हो। क्योंकि जिस भी समाज में नर और नारी में भेद किया जाता है, नारी को उसके अधिकारों से वंचित किया जाता है, नारी को हसी न्याय प्राप्त नहीं होता हे चाहे वह किसी भी युग का समजा या राष्ट्र क्यों न हो कभी भी उन्नति नहीं कर सकता है।

प्रस्तावना

हम आज की नारी के सन्दर्भ में देखे तो हम पाते हैं कि नारी को न्याय प्राप्त नहीं हो रहा है। उसका भूरपूर शोषण हो रहा है। क्या स्त्री को अपना शोषण होने पर उसके विरूद्ध न्याय प्राप्त करने का अधिकार है? इतना तो दूर क्या स्त्री को इस बात का ही ज्ञान है कि उसका शोषण हो रहा है तो हम पायेंगे नहीं। आज भी नारी का क्रय–विक्रय हो रहा है, उससे बेगार कराया जा रहा है। उसे आज भी घूँघट और पर्दे की आड़ में घर की चारदीवारी में बन्द करके उसे उसके अधिकारों से वंचित रखकर उसके हिस्से का भाग समझकर स्वीकार कर रही है।

विश्व सभ्यता एवं मानव समाज विकासोन्मुख है। हम एक सुसंस्कुत कहे जाने वाले समाज की सीढ़ियाँ तेजी से चढ़ रहे हैं किन्तु अभी भी कहीं–न–कहीं हमारे भीतर आदिमानव जैसी दरिंदगी, बहशीपन तथा पाशविकता यथावत है। मानव समज आज भी नारी जाति का मान मर्दन करने, नारी उत्पीड़न एवं शोषण करने में आगे है। औरत को आज भी भोग्या की मानसिकता से देखा जाता है। न सिर्फ भारत अपतु संपूर्ण विश्व के विकसित देशों में नारी उत्पीड़न की घटनाओं में बेतहाशा वृद्धि हुई है।

नारी उत्पीड़न सिर्फ इसलिये और बढ़ा है क्योंकि आज की भारतीय नारी अपने अधिकारों और सरकार द्वारा प्रदत नारी उत्पीड़न सम्बन्धी कानूनों से पूरे तौर पर वाकिफ नहीं है या वाकिफ होते हुये भी उनके प्रति उसमें उतनी चेतना नहीं है जितनी कि होनी चाहिये। नारी को प्रदत्त कानूनी शक्तियों एवं अधिकारों के प्रति उसकी चेतना शून्यता ने ही नारी उत्पीड़न को बढ़ावा दिया है। इस प्रकार नारी स्वयं अपने उत्पीड़न के लिये परोक्ष रूप से जिम्मेदार हे।

ऐसा नहीं है कि उसकी उन्नति के प्रयास नहीं हुये है। निरन्तर कानून बने हैं बल्कि अंग्रेजों के जमाने से ही स्त्रियों के उत्थान के लिये संघर्ष हुये हैं। परन्तु उसकी स्थिति में जैसा परिवर्तन अपेक्षित था वैसा नहीं हो पाया है। कानूनों का लाभ उसे मिल नहीं पाया है। परन्तु फिर भी समय–समय पर स्त्रियों से सम्बन्धित कानून बने हैं जिन्होंने काफी सीमा तक उनकी स्थिति को सुधारने में मदद की है। उनकी स्थिति में परिवर्तन हुआ है, परन्तु उसकी गति बहुत मंद है।

'कानून' सामाजिक परिवर्तन के साधन के रूप में

अंग्रेजों के जमाने में विभिन्न धार्मिक समुदायों के सामाजिक और धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप न करने की सामान्य नीति ने बहु प्रणालियों को कायम रखा तथा सामाजिक, आर्थिक परिवर्तनों के साथ–साथ उनके सहजरूप में ढलते रहने के मार्ग में बाधक बनने के कारण इस नीति ने इन समुदायों में गतिहीनता की स्थिति उत्पन्न कर दी। 19वी. शताब्दी में जो सामाजिक सुधार हुये, उनहोंने मानवीय विचारों तथा सामाजिक माँगों के फलस्वरूप कुछ हद तक सामंजस्य का प्रयत्न किया। उस समय सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि सती प्रथा पर रोक लगाने वाला कानून था, राष्ट्रीय आन्दोनल के बल पकड़ने तथा महात्मा गाँधी के प्रयत्नों से विधि व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने और महिलाओं की विधिजन्य हीन स्थिति को समाप्त करने एवं उनके जीवन तथा व्यक्तित्व पर प्रभाव डालने वाले

विवाह, विवाह–विच्छेद उत्तराधिकार अथवा बच्चों के संरक्षण जैसे मामलों में उनके साथ किये जा रहे भेदभावों को समाप्त करने की माँग पेश की जाने लगी। इस प्रकार हिन्दू कानून में सुधार का सूत्रपात तो स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले ही हो चुका था। यह बात अलग है कि रूढ़िवादी प्रतिरोध के कारण यह सुधार उन्नीसवीं शताब्दी के छठें दशक में ही, और वह भी थोड़ा–थोड़ा करके लाया जा सका।

सामाजिक परिवर्तन लाने के लिये विधि निर्माण पर परम आश्रितता केवल हमारे देश की ही नहीं, वरन् अनेक आधुनिक समाजों की, विशेषकर विदेशी शासन से मुक्ति पाने वाले समाजों की विशेषता है। इसमें संदेह नहीं कि सामाजिक परिवर्तन लाने में कानून थोड़ी बहुत सहायता अवश्य करता है किन्तु सच तो यह है कि विधि निर्माण कर देने मात्र से समाज में कोई परिवर्तन नहीं लाया जा सकता। न्यायलय विधि निर्माण के आधारभूत सिद्धानतों को कार्यान्वित करने में प्रायः ही सफल रहा है। यदि विधि निर्माण से ही किसी देश का सामाजिक मूल्य परिलक्षित होता हो तो स्त्री स्वातंत्र्य की मात्रा उसकी सामान्य संस्कृति उन्नति का मापदंड बन सकता है।

नारी की स्थिति को सुधारने के लिये अनेकों कानून पारित किये गये हैं। जिनसे स्त्रियों की दशा में सुधार हो सकता है। यहाँ महिलाओं के लिये निर्मित कानूनों की विवेचना करना उपयुक्त होगा।

विवाह संबंधी कानून

विवाह से सम्बन्धि जिन मुख्य विषयों पर सावधानीपूर्वक ध्यान दिया जाना चाहिये वे है, बहुविवाह प्रथा, द्विविवाह के विरूद्ध कानूनी उपलब्धों का प्रभावी प्रवर्तन, विवाह की आयु तथा दहेज प्रथा निषेध अधिनियम।

हिन्दू विवाह अधिनियम के अन्तर्गत द्वि–विवाह के विरूद्ध किये गये उपलबन्ध का प्रवर्तन– द्विविवाह हिन्दुओं के लिये अपराध माना गया है। दूसरा विवाह विधि मान्य नहीं होता है फिर भी इस प्रकार के विवाह अभी प्रचलित हैं। इसकी पुष्टि 1961 की जनगणना अध्ययन से हो जाती है। अशिक्षिति और आर्थिक रूप से आश्रित महिलाओं के लिये न्यायालय तक पहूँचाना कठिन होता है। पति के खिलाफ अभियोग लगाने में उन्हें परिवार का समर्थन सदैव प्राप्त होता है। विवाह संस्कार के विधिवत् सम्पादन की पारिभाषिक अर्थ विवेचना भी कठिनाइयाँ उत्पन्न करती हैं। परन्तु भारत सरकार ने स्त्रियों के लिये द्वि–विवाह से संबंधित निम्न कानून बनये हैं।

न्यायालय की अनुज्ञा से, द्वि–विवाह के लिये अभियोग की कार्यवाही शुरू करने का अधिकार कन्या के परिवार के लोगों को है। यदि किसी स्त्री का पति, एक पत्नी के जीवित रहते दूसरा विवाह करता है तो कानूनी तौर पर दंडित किया जायेगा।

विवाह की आयु

बाल–विवाहों के विनाशकारी प्रभावों ने समाज सुधारकों को इस बात के लिये बाध्य कर दिया कि वे कानून निर्माण द्वारा इन विवाहों पर रोक लगवायें सिविल विवाह अधिनियम 1872 में विवाह की न्यूनतम आयू 14 वर्ष निश्चित की गई थी। अल्प वय के विवाह को रोकने के लिये किये गये प्रयत्नों के फलस्वरूप ऐसे उपाय सामने आये जिन्होंने क्रमशः बाल विवाह की आयु 13 वर्ष कर दिया। राज राममोहन राय तथा ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने इसके विरूद्ध आवजें उठायीं। 1860 के कानून के अनुसार दस वर्ष से कम आयु की पत्नी के साथ शारीरिक संबंध को बलात्कान माना गया, और उसके लिये आजीवन कारावास का दंड रखा गया। इस सम्बन्ध में कई कानून बने परन्तु उनमें 1929 का हरबिलास शारदा का बाल विवाह निरोधक, अधिनियम विशेष महत्वपूर्ण है। शारदा एक्ट के नाम से प्रसिद्ध इस अधिनियम में ऐसी व्यवस्था थी कि 18 वर्ष से कम आयु के लड़के और 15 वर्ष से कम आयु की लड़की का विवाह बाल विवाह माना जायेगा और वह दंडनीय होगा। 1948 में इसमें कुछ संशोधन हुये। शारदा एक्ट में इतना सामान्य दंड था कि वर पक्ष पर उसका विशेष प्रभाव नहीं पड़ता था। साथ ही कानून में यह कमी भी थी किसी के शिकायत करने पर ही पुलिस ऐसे विवाह में हस्तक्षेप कर सकती थी। बाद में विशेष विवाह अधिनियम 1954 में विवाह की न्यूनतम आयु पुरूषों और स्त्रियों के लिये क्रमशः 21 और 18 वर्ष रखी गयी है। अन्य सभी वैयक्तिक कानूनों में लड़कियों की आयु 18 वर्ष रखी गयी है। यहाँ गुजरात सरकार द्वारा की गयी शुभ पहल का उदाहरण देना उचित होगा क्योंकि गुजरात में बाल विवाह को एक संज्ञेय अपराध मान लिया गया है।

दहेज निषेघ अधिनियम

दहेज निषेध अधिनियम से पूर्व दहेज समस्या पर सामाजिक और विधिक परिप्रेक्ष्य से प्रकाश डालना आवश्यक है।

हमारे देश में विवाह हिन्दुओं में एक मसझौता नहीं बल्कि एक संस्कार माना गया है और हिन्दू संहिता बनने के पूर्व यदा–कदा ही पति–पत्नी के सम्बन्धों के विच्छेद होने का विचार मात्र ही कठिनता से कभी सुनने को मिल पाता था। विधवा विवाह अधिनियम के पूर्व पति एवं पत्नी का संबंध पति की मृत्यु के उपरान्त भी यथावत् बना रहता था किन्तु उस युग में भी विवाह के समय अपनी–अपनी शक्ति के अनुसार वधू को निकट संबंधियों, मित्रों एवं परिवाजनों द्वारा स्वेच्छा से उपहार दिये जाते थे जिसका आधार आर्थिक न होकर परम्परा के रूप में होता था। वास्तविक रूप में देखा जाये तो पुत्र अथवा पुत्री अपने माता–पिता के लिय एक समान ही होते हें किन्तु वैधानिक धारणाओं से पुत्री अपने पिता की सम्पत्ति में अधिकारीणी नहीं होती थी और सारी सम्पत्ति पुत्रों में बँटती थी इसलिये भी अपनी पुत्री को यथाशक्ति जो भी दे सकते थे, दिया करते थे।

सन् 1956 में पुत्रियों को भी पैतृक सम्पति में अधिकार प्राप्त हो जाने के पश्चात् परिवहन साधनों ने जब महीनों की अवधि घंटों में परिवर्तित कर दी तथा वधू का आवगमन सरल हो गया तो सम्भवतः उपहारों के आधार में भी परिवर्तन आना आवश्यक था किन्तु आर्थिक वयवस्था, अर्थ का महत्व समाज में अपनी झूठी प्रतिष्ठा स्थापित करने तथा व्यक्ति का महत्व और उसका अनुकरण केवल अर्थ पर ही आधारित होने के कारण एक समय की परम्परा जो उपरोक्त कारणों से बनी थी उसे अब एक घिनौना रूप दिया गया जिसे हम आज दहेज के नाम से जानने लगे हैं।

ज्यों–ज्यों समय बीमता गया और समाज में अर्थ का महत्व बढ़ता चला गया। दहेज प्रथा एक जटिल समस्या के रूप में हमारे सामने आती चली गयी। कुछ दशक पूर्व तक अपने संस्कारों के कारण वधुओं ने दहेज प्राप्त न होने पर, जो भी प्रतिकार एवं अत्याचार उन पर होता था, उसे वे अपना धर्म मानकर सह लेती थीं और किसी प्रकार दाम्पत्य जीवन की गाड़ी सुख–दुःख की सीढ़ियाँ पार करती हुयी आगे बढ़ती रहीं। एक समय ऐसा अया जब वर पक्ष ने वधू पक्ष की इस सहनशीलता को अपनी हार समझी और प्रताड़ना अत्याचार को सफल होते देखा, तो इधर कुछ दशकों से इन प्रताड़नाओं और अत्याचारों का स्वरूप क्रमशरू बदलना प्रारम्भ हुआ जिसका स्वरूप वधू की हत्या करने में परिवर्तित हो गया। एक समय ऐसा आया जब समाज के सामने यह प्रवृत्ति एक जटिल समस्या के रूप में आकर खड़ी हो गयी।

कानून क्यों?

दहेज सम्बन्धी कानूनों की आवश्यकता उपरोक्त कारणों से ही उत्पन्न हुयी है। प्रारम्भ में केवल देश के दो ही प्रदेशों में, सर्वप्रथम बिहार प्रदेश की प्रान्तीय सरकार ने इस सम्बन्ध में सन् 1950 में ‘बिहार दहेज निषेध अधिनियम’ पारित किया जिसके द्वारा दहेज की माँग वर्जित की गयी। इसी प्रकार आन्ध्र प्रदेश में भी एक अधिनियम पारित किया गया। उपरोक्त दोनों अधिनियमों की

सीमा बहुत ही संकुचित थी किन्तु इसका परिणाम ये हुआ कि केन्द्रीय सरकार को भी इस ओर ध्यान देना पड़ा। दहेज को रोकने के लिये दहेज निरोधक कानून अधिनियम संख्या 28 के अन्तर्गत 6 मई 1961 को लोकसभा तथा राज्यसभा की संयुक्त बैठक में पारित हुआ था तथा 22 मई सन् 1961 को यह कानून बन गया। अधिनियम में दहेज को परिभाषित किया गया तथा दहेज लेना व देना दोनों को ही अपराध मान लिया गया। दहेज लेने तथा देने वाले के अतिरिकत इस कार्य में सहायता करने वाले को 6 मास का कारावास तथा 5 हजार रुपये तक जुर्माने की सजा भी दी जा सकती है। इस कानून का उल्लंघन करते हुये जो कुछ भी दहेज दिया जायेगा वह सभी पत्नी की सम्पत्ति मानी जायेगी और पत्नी या उसके उत्तराधिकारी को प्राप्त होगी।

परन्तु यह एक अलग बात है कि दहेज तथा निषेध अधिनियम 1961 अपनी प्रयोजन सिद्धि में बुरी तरह असफल हुआ है। एक ओर दहेज लेने–देने में वृद्धि हुई है और दूसरी ओर इस अधिनियम के अन्तर्गत जिन मामलों पर कार्रवाई की गयी वे केवल इने–गिने हैं। दहेज विधेयक पर बहस के दौरान यह कहा गया था कि इस समस्या के समाधान के लिये विधि निर्माण की अपेक्षा सामाजिक चेतना को जगाना आवश्यक है और यह भी दावा किया गया था कि जैसे–जैसे स्त्रियों के लिये रोजगार के दरवाजे खुलते जायेंगे और अन्य अवसर अधिक सुलभ होंगे वैसे–वैसे यह बुराई कम होती जायेगी। दोनों ही क्षेत्रों में किसी तरह का विकास हुआ हो ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता।

उपरोक्त व्यवस्था से कोई विशेष लाभ न होता देखकर अधिनियम संख्या 47 सन् 1983 के द्वारा 'भारतीय दंड विधान' में तथा 'भारतीय दंड प्रक्रिया संहिता' में परिवर्तन किये गये। ''दहेज विरोधी कानून के संशोधन करने के साथ सरकार ने महिलाओं पर दहेज व अन्य कारणों से अत्याचार रोकने सम्बन्धी कई महत्वपूर्ण–कदम उठाये जो इस प्रकार हैं।''

1. दंड विधान (दूसरा संशोधन) अधिनियम 1983
2. परिवार न्यायालयों की स्थापना अधिनियम १1984
3. पुलिस ढाँचे में महिलाओं की शिकायतें सुनने के लिये विशेष सैल की स्थापना।

1. दंड विधान (दूसरा संशोधन) अधिनियम 1983

महिलाओं के प्रति बढ़ती हिंसा रोकने के लिये सरकार ने यह कानून बनाया है। इस कानून में महिलाओं के प्रति, पति अथवा उसके संबंधियों द्वारा की गयी हिंसा की नई परिभाषा दी गयी है। इसमें कहा गया है कि जानबूझ कर किया गया ऐसा कोई भी व्यवहार जो स्त्री को आत्महत्या करने की ओर अग्रसर करे या उसे शारीरिक अथवा मानसिक नुकसान पहुँचे तो इस धारा के अन्तर्गत तीन वर्ष का कठोर कारावास तथा जुर्माने की व्यवस्था की गयी। इसी प्रकार दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 174, 176 तथा 118 (ए) में भी परिवर्तन किये गये।

2. पारिवारिक न्यायालय अधिनियम 1984

इस अधिनियम में पारिवारिक न्यायालय स्थापित करने का प्रावधान है। इन न्यायालयों को वैवाहिक झगड़े सुलझाने का काम सौंपा गया है। ये न्यायालय इस उद्देश्य से बनाये गये हैं कि विवाह संबंधी विवादों में आपसी समझौते का तरीका अपना कर इन झगड़ों पर जल्दी निर्णय लिया जा सके। इन न्यायालयों को यह भी अधिकार है कि वे आवश्यकतानुसार विशेषज्ञों, सामाजिक कार्यकताओं, मान्यता प्राप्त संस्थाओं, मनोवैज्ञानिकों आदि से आवश्यक सहायता ले सकते हैं। ये न्यायालय दोनों पक्षों में सुलह कराने का प्रयास करेंगे।

निष्कर्ष

इस प्रकार की व्यवस्था से महिलाओं को कितना लाभ पहुँचेगा, कहना कठिन है क्योंकि जब कभी इस प्रकार के झगड़े होते हैं और दो पक्षों में सुलह कराई जाती है, तो यह देखने में आता है कि समझौता स्त्री के ऊपर दबाव डाल कर कराया जाता है और उसकी कीमत औरत को ही देनी पड़ती हैं। औरत को पुनः अनचाहे विवाह बंधन में धकेल दिया जाता है, ताकि विवाह बंधन न टूटे, बच्चों का हित बना रहे। स्त्री इस प्रकार के समझौते में वापस विवाह की बेड़ी में जकड़ दी जाती है, जहाँ उसे शारीरिक व मानसिक यातनायें झेलनी पड़ती हैं। समाज के इस प्रकार के दृष्टिकोण व व्यवहार के कारण ही स्त्रियों पर घरेलू प्रताड़ना, दहेज सम्बन्धी मृत्यु और आग लगा कर जलाने की घटनायें निरंतर घटित हो रही हैं।

संदर्भ

1. श्री कृष्णदत्त भढ्ट सामाजिक विघटन और भारत् बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, सम्लेन भवन, कदमकुआँ, पटना
2. त्रिपाठी चनद्रबलि, भारतीय समाज में नारी आदर्शों का विकास जियाउदीन अहमद, भारत की सामाजिक संस्थायें
3. वी.सी. सिन्हा, आर. एस. द्विवेदी, सामाजिक अनुसंधान के तत्व, नेशनल पटिलशिंग हाउस, नयी दिल्ली, जयपुर
4. दैनिक जागरण
5. दैनिक आज